भाषा । साहित्य । संस्कृति

प्रश्नचिह्न

सुना है वह गणित में बहुत कमजोर थी
पर वक्त बदला
वक्त के साथ रिश्ते भी उसने उंगलियों पर
गिन रखे थे उनकी भूख के हिसाब
नौ बजे नाश्ता डेढ़ बजे खाना
छः बजे चाय
नौ बजे रात का खाना
एक दम नपा-तुला
उसकी उंगलियों के स्वाद की तरह।

~ रंजना जायसवाल

वर्ष : 03 | अंक : 25 | अप्रैल 2026

9 789360 381158

आवरण : तन्वी मंडलोई

संपादक : आलोक रंजन

भाषा । साहित्य । संस्कृति

प्रश्नचिह्न

अप्रैल 2026 । पच्चीसवाँ अंक

प्रबंध सम्पादकः

राहुल राज

प्रबंध सहयोगः

सौरव कुमार भारती

आवरणः तन्वी मंडलोई

रेखांकनः श्वेता कुमारी

सम्पादक

आलोक रंजन

अक्षर संयोजन

खुशी

प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के अधीन सुरक्षित है। प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार, तथ्य लेखकों के अपने हैं। प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं के लिए प्रश्नचिह्न पत्रिका समूह का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही पत्रिका इसके लिए उत्तरदायी है।

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए-	600.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए-	1500.00 रुपये
विदेशों में-	$25

एक प्रति का मूल्य :

व्यक्तियों के लिए-	50.00 रुपये
संस्थाओं के लिए-	100.00 रुपये
विदेशों में-	$10

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर-	20,000.00 रुपये
अन्दर कवर-	15,000.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ-	10,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ-	7,000.00 रुपये

संपादकीय कार्यालयः

8/54 - ए, प्रथम तल, डबल स्टोरी,
विजय नगर, दिल्ली - 110009
मोबाइल : 9155113056

ई-मेल: prashanchinha.patrika@gmail.com
infoprashanchinha.patrika@gmail.com

वेबसाईट: https://prashanchinhapatrika.blogspot.com

फेसबुक: https://www.facebook.com/prasnacihnapatrika

इंस्टाग्राम: https://www.instagram.com/prashanchinha.patrika

अनुक्रम

सम्पादकीय

कविताएँ

रंजना जायसवाल, पुष्कर तिवारी, दीपक दीक्षित

गोकुल सोनी, आकृति विज्ञा 'अपर्ण

कहानियाँ

संजय कुमार सिंह

आलेख

श्री आनंद दास

समीक्षा

तेजस पूनियां

संस्मरण

किरण सिंह

स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न : सभ्यता के आईने में हमारा समाज

सभ्यता के इतिहास में मनुष्य ने अनेक साम्राज्य बनाए, अनेक विचारधाराएँ गढ़ीं और विकास के असंख्य प्रतिमान स्थापित किए। किंतु यदि इतिहास का सबसे लंबा और सबसे मौन संघर्ष किसी ने लड़ा है, तो वह स्त्री ने लड़ा है। यह संघर्ष केवल अपने अधिकारों के लिए नहीं था, बल्कि अपने अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्वीकार करवाने का संघर्ष था। विडंबना यह है कि इक्कीसवीं सदी के भारत में भी यह संघर्ष पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। हम ऐसे समय में जी रहे हैं जहाँ भारत विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अंतरिक्ष अनुसंधान, डिजिटल क्रांति और वैश्विक नेतृत्व के नए अध्याय लिखे जा रहे हैं। लेकिन जब हम इन उपलब्धियों के पीछे खड़े समाज की ओर देखते हैं, तो एक कठोर प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है। क्या विकास का यह प्रकाश हमारे घरों की चौखट तक पहुँचा है? क्या हमारी बेटियाँ, बहनें, सहकर्मी और जीवनसंगिनियाँ वास्तव में स्वतंत्र हैं? या वे आज भी परंपराओं, रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक सोच की अदृश्य दीवारों में कैद हैं?

पितृसत्ता केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक मानसिक संरचना है। यह पुरुष को अधिकार और स्त्री को कर्तव्य सौंपती है। पुरुष को निर्णय लेने वाला और स्त्री को निर्णय मानने वाला बनाती है। यह व्यवस्था स्त्री के श्रम को उसका धर्म, उसके त्याग को उसका स्वभाव और उसकी चुप्पी को उसका आभूषण घोषित करती रही है। यही कारण है कि अनेक स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करने, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय होने के बावजूद अपने ही घरों में बराबरी का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकीं।

समाज ने सदियों तक स्त्री की भूमिका निर्धारित की, किंतु कभी उसके सपनों से नहीं पूछा कि वे क्या चाहते हैं। उसके जीवन का निर्णय परिवार ने किया, उसके भविष्य का निर्णय समाज ने किया और उसके शरीर पर अधिकार भी अक्सर उसी का नहीं रहा। जब भी उसने प्रश्न पूछे, उसे मर्यादा का पाठ पढ़ाया गया; जब उसने अपने अधिकार माँगे, उसे संस्कारों की दुहाई दी गई; और जब उसने अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई, उसे परिवार की प्रतिष्ठा का भार याद दिलाया गया।